~~~~~~

ओ३म् सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः

भूमिका

जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था, उस समय और उस से पूर्व संस्कृतभाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझ को इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है। इसलिए इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी वार छपवाया है। कहीं-कहीं शब्द, वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था, क्योंकि इसके भेद किए विना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है, प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हाँ, जो प्रथम छपने में कहीं-कहीं भूल रही थी, वह वह निकाल शोधकर ठीक-ठीक कर दी गई है।

यह ग्रन्थ १४ चौदह समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है। इसमें १० दश समुल्लास पूर्वार्द्ध और ४ चार उत्तरार्द्ध में बने हैं, परन्तु अन्त्य के दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छप सके थे, अब वे भी छपवा दिये हैं।

१. प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओङ्काराऽऽदि नामों की व्याख्या।
२. द्वितीय समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा।
३. तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठनपाठनव्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने पढ़ाने की रीति।
४. चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार।
५. पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम का विधि।
६. छठे समुल्लास में राजधर्म।
७. सप्तम समुल्लास में वेदेश्वर-विषय।
८. अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय।
९. नवम समुल्लास में विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष की व्याख्या।
१०. दशवें समुल्लास में आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय।
११. एकादश समुल्लास में आर्य्यावर्त्तीय मत मतान्तर का खण्डन मण्डन विषय।
१२. द्वादश समुल्लास में चारवाक, बौद्ध और जैनमत का विषय।
१३. त्रयोदश समुल्लास में ईसाई मत का विषय।
१४. चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय।

और चौदह समुल्लासों के अन्त में आर्यों के सनातन वेदविहित मत की विशेषतः व्याख्या लिखी है, जिसको मैं भी यथावत् मानता हूँ।

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उस को सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु
~~~~~~

जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्याऽसत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयम् अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

मनुष्य का आत्मा सत्याऽसत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्याऽसत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

इस ग्रन्थ में जो कहीं-कहीं भूल-चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल-चूक रह जाय, उसको जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जायेगा। और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शङ्का वा खण्डन मण्डन करेगा, उस पर ध्यान न दिया जायेगा। हाँ, जो वह मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उस को सत्य-सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा।

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है।

इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु **'सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।'** अर्थात् सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थप्रकाश करने से नहीं हटते।

यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि **'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।'** यह गीता का वचन है। इसका अभिप्राय यह है कि जो-जो विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धरके मैंने इस ग्रन्थ को रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के इस ग्रन्थ का सत्य-सत्य तात्पर्य जान कर यथेष्ट करें।

इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो-जो सब मतों में सत्य-सत्य बातें हैं, वे वे सब में अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार करके जो-जो मतमतान्तरों में मिथ्या बातें हैं, उन-उन का खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि सब मतमतान्तरों की गुप्त वा प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान्

सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिससे सब से सब का विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्य मतस्थ होवें।

यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और वसता हूँ, तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मत वालों के साथ भी वर्त्तता हूँ। **जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है।** क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं। क्योंकि जैसे पशु बलवान् हो कर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानिमात्र करता रहता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

अब आर्य्यावर्त्तीयों के विषय में विशेष कर ११ ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा है। इन समुल्लासों में जो कि सत्यमत प्रकाशित किया है, वह वेदोक्त होने से मुझ को सर्वथा मन्तव्य है और जो नवीन पुराण तन्त्रादि ग्रन्थोक्त बातों का खण्डन किया है, वे त्यक्तव्य हैं।

यद्यपि जो १२ बारहवें समुल्लास में चारवाक का मत, इस समय क्षीणाऽस्त सा है और यह चारवाक बौद्ध जैन से बहुत सम्बन्ध अनीश्वरवादादि में रखता है। यह चारवाक सब से बड़ा नास्तिक है। उसकी चेष्टा का रोकना अवश्य है, क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो संसार में बहुत से अनर्थ प्रवृत्त हो जायें।

चारवाक का जो मत है वह, बौद्ध और जैन का मत है, वह भी १२ बारहवें समुल्लास में संक्षेप से लिखा गया है। और बौद्धों तथा जैनियों का भी चारवाक के मत के साथ मेल है और कुछ थोड़ा सा विरोध भी है। और जैन भी बहुत से अंशों में चारवाक और बौद्धों के साथ मेल रखता है और थोड़ी सी बातों में भेद है, इसलिये जैनों की भिन्न शाखा गिनी जाती है। वह भेद १२ बारहवें समुल्लास में लिख दिया है यथायोग्य वहीं समझ लेना। जो इसका भिन्न है, सो-सो बारहवें समुल्लास में दिखलाया है। बौद्ध और जैन मत का विषय भी लिखा है।

इनमें से बौद्धों के दीपवंशादि प्राचीन ग्रन्थों में बौद्धमत संग्रह **'सर्वदर्शनसंग्रह'** में दिखलाया है, उस में से यहां लिखा है और जैनियों के निम्नलिखित सिद्धान्तों के पुस्तक हैं। उन में से—

४ चार मूलसूत्र, जैसे—१ आवश्यकसूत्र, २ विशेष आवश्यकसूत्र, ३ दशवैकालिकसूत्र, और ४ पाक्षिकसूत्र।

११ ग्यारह अंग, जैसे—१ आचारांगसूत्र, २ सुगडांगसूत्र, ३ थाणांगसूत्र, ४ समवायांगसूत्र, ५ भगवतीसूत्र, ६ ज्ञाताधर्मकथासूत्र, ७ उपासकदशासूत्र, ८ अन्तगड़दशासूत्र, ९ अनुत्तरोववाईसूत्र, १० विपाकसूत्र और ११ प्रश्नव्याकरणसूत्र।

१२ बारह उपांग, जैसे—१ उपवाईसूत्र, २ रावप्सेनीसूत्र, ३ जीवाभिगमसूत्र, ४ पन्नगणासूत्र, ५ जम्बुद्वीपपन्नतीसूत्र, ६ चन्दपन्नतीसूत्र, ७ सूरपन्नतीसूत्र, ८ निरियावलीसूत्र, ९ कप्पियासूत्र, १० कपवड़ीसयासूत्र, ११ पूप्पियासूत्र, १२ पुप्यचूलियासूत्र।

५ पाँच कल्पसूत्र, जैसे—१ उत्तराध्ययनसूत्र, २ निशीथसूत्र, ३ कल्पसूत्र, ४ व्यवहारसूत्र, और ५ जीतकल्पसूत्र।

६ छह छेद, जैसे—१ महानिशीथबृहद्वाचनासूत्र, २ महानिशीथलघुवाचनासूत्र, ३ मध्यमवाचनासूत्र, ४ पिण्डनिरुक्तिसूत्र, ५ औघनिरुक्तिसूत्र, ६ पर्य्यूषणासूत्र।

१० दश पयन्नासूत्र, जैसे—१ चतुस्सरणसूत्र, २ पञ्चखाणसूत्र, ३ तदुलवैयालिकसूत्र, ४ भक्तिपरिज्ञानसूत्र, ५ महाप्रत्याख्यानसूत्र, ६ चन्दाविजयसूत्र, ७ गणीविजयसूत्र, ८ मरणसमाधिसूत्र, ९ देवेन्द्रस्तवनसूत्र, और १०. संसारसूत्र तथा नन्दीसूत्र, योगोद्धारसूत्र भी प्रामाणिक मानते हैं।

५ पञ्चाङ्ग, जैसे—१ पूर्व सब ग्रन्थों की टीका, २ निरुक्ति, ३ चरणी, ४ भाष्य। ये चार अवयव और सब मिलके पञ्चाङ्ग कहाते हैं।

इनमें ढूंढिया अवयवों को नहीं मानते और इन से भिन्न भी अनेक ग्रन्थ हैं कि जिन को जैनी लोग मानते हैं। इन का विशेष मत पर विचार १२ बारहवें समुल्लास में देख लीजिए।

जैनियों के ग्रन्थों में लाखों पुनरुक्त दोष हैं और इनका यह भी स्वभाव है कि जो अपना ग्रन्थ दूसरे मतवाले के हाथ में हो वा छपा हो तो कोई-कोई उस ग्रन्थ को अप्रमाण कहते हैं, यह बात उन की मिथ्या है। क्योंकि जिस को कोई माने, कोई नहीं, इससे वह ग्रन्थ जैन मत से बाहर नहीं हो सकता। हाँ, जिस को कोई न माने और न कभी किसी जैनी ने माना हो, तब तो अग्राह्य हो सकता है। परन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है कि जिसको कोई भी जैनी न मानता हो। इसलिए जो जिस ग्रन्थ को मानता होगा उस ग्रन्थस्थ विषयक खण्डन मण्डन भी उसी के लिए समझा जाता है। परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस ग्रन्थ को मानते जानते हों तो भी सभा वा संवाद में बदल जाते हैं। इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते हैं। दूसरे मतस्थ को न देते, न सुनाते और न पढ़ाते, इसलिए कि उन में ऐसी-ऐसी असम्भव बातें भरी हैं जिन का कोई भी उत्तर जैनियों में से नहीं दे सकता। झूठ बात का छोड़ देना ही उत्तर है।

१३वें समुल्लास में ईसाइयों का मत लिखा है। ये लोग बायबिल को अपना धर्म-पुस्तक मानते हैं। इन का विशेष समाचार उसी १३ तेरहवें समुल्लास में देखिए और १४ चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत-विषय में लिखा है। ये लोग कुरान को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं। इनका भी विशेष व्यवहार १४वें समुल्लास में देखिए और इस के आगे वैदिकमत के विषय में लिखा है।

जो कोई इस ग्रन्थकर्त्ता के तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा, क्योंकि वाक्यार्थबोध में चार कारण होते हैं—आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर, जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है, तब उस को ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है—

'आकाङ्क्षा' किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थ पदों की आकांक्षा परस्पर होती है।

'योग्यता' वह कहाती है कि जिस से जो हो सके, जैसे जल से सींचना।

'आसत्ति' जिस पद के साथ जिसका सम्बन्ध हो, उसी के समीप उस पद को बोलना वा लिखना।

'तात्पर्य' जिस के लिए वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो, उसी

के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना।

बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेष कर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फँस के नष्ट हो जाती है। इसलिए जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उन में से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करता हूं, वैसा सबको करना योग्य है।

इन मतों के थोड़े-थोड़े ही दोष प्रकाशित किए हैं, जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्याऽसत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने कराने में समर्थ होवें, क्योंकि एक मनुष्य जाति में बहका कर, विरुद्ध बुद्धि कराके, एक दूसरे को शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है।

यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेंगे, तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इस का अभिप्राय समझेंगे, इसलिये मैं अपने परिश्रम को सफल समझता और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूँ।

इस को देख-दिखला के मेरे श्रम को सफल करें। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करके मुझ वा सब महाशयों का मुख्य कर्त्तव्य काम है।

सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे।

॥ अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वरशिरोमणिषु ॥
॥ इति भूमिका ॥

स्थान महाराणा जी का उदयपुर
भाद्रपद, शुक्लपक्ष संवत् १९३९

(स्वामी) दयानन्द सरस्वती